

कबीर की भाषा



हिंदी डी सी -1

सेमेस्टर-I

प्रश्न पत्र- III, आदिकालीन और भक्तिकालीन काव्य

इकाई-1

अध्याय: कबीर की भाषा

अध्याय लेखक: नीरज

कॉलेज / विभाग : भारती कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

कबीर की भाषा

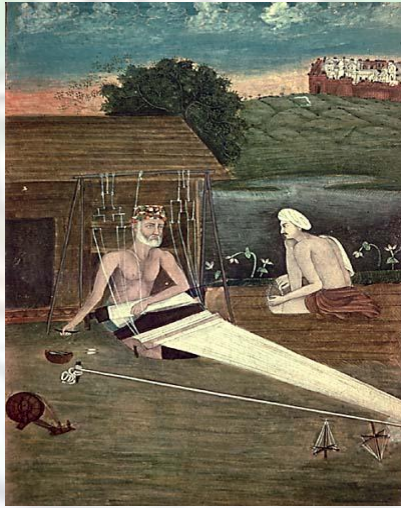
कबीर की भाषा

1. विषय प्रवेश : भाषा, भाषा और साहित्य का संबंध
2. भक्तिकाल और भाषा का प्रश्न
3. कबीर की भाषा
 - I. मत भिन्नता के कारण
 - II. आलोचकों की दृष्टि में
 - III. विभिन्न बोलियों/भाषाओं की भूमिका
4. भाषिक संरचना के विभिन्न आयाम और कबीर की भाषा
 - I. शब्द-भण्डार
 - II. व्यंग्यात्मकता
 - III. अलंकार
 - IV. मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ
 - V. 'कहै कबीर' यानी विद्रोहात्मक संबोधन शैली
 - VI. काव्य-रूप एवं छंद
 - VII. प्रतीकात्मकता एवं उल्टबाँसियाँ
5. निष्कर्ष
6. प्रश्नावली
7. संदर्भ-ग्रंथ सूची
8. सहायक ग्रंथ सूची

कबीर की भाषा

1. विषय प्रवेश : भाषा, भाषा और साहित्य का संबंध

मानव सभ्यता मूल रूप से अनुभूतियों के आदान-प्रदान पर आधारित है. भाषा मनुष्य की सर्वोत्कृष्ट सामाजिक, सांस्कृतिक एवं अनुभूतिजन्य उपलब्धि होती है जिसके माध्यम से वह अपने भावों एवं विचारों को अभिव्यक्त करता है. हालांकि आज के इस 'सूचना क्रांति' के युग में भाषाएँ बाज़ार की मांग के अनुसार सीखी, समझी और पढ़ी भले जा रही हैं, परन्तु भाषा के साथ मनुष्य का संबंध आज भी सिर्फ साधन या सिर्फ साध्य का न होकर साधन और साध्य दोनों का है. जहाँ तक साहित्य के साथ भाषा के संबंध का सवाल है तो कोई भी साहित्य भाषा के भीतर ही अपना स्वरूप ग्रहण करता है. भाषा भावानुरूप रचनावस्तु को निर्धारित करने वाली शक्ति होती है जिसके द्वारा किसी रचनाकार की प्रतिभा, उसके साहित्य की उत्कृष्टता एवं उस परिवेश की संस्कृति का मूल्यांकन किया जाता है. यही कारण है कि प्रत्येक युग की रचनाशीलता भाषा के संकट और उसके समाधान की प्रक्रिया से गुजरकर ही अर्थवान होती है. इसलिए साहित्य में भाषा का अध्ययन सिर्फ उसके संरचनात्मक संगठनों जैसे रस, अलंकार शैली, लोकोक्ति, मुहावरे, बिम्ब, प्रतीक इत्यादि) का अध्ययन न होकर उस परंपरा, परिवेश एवं संस्कृति की विकासमानता / हासोमुखता का भी अध्ययन होता है जिसके माध्यम से वह रचना में मूर्त होता है.



(चित्र : कबीरदास, साभार : विकिपीडिया, लिंक - <http://en.wikipedia.org/wiki/Kabir>)

कबीर की भाषा

भक्तिकाल और भाषा का प्रश्न :

भारतीय समाज, संस्कृति और साहित्य के इतिहास में भक्ति-आन्दोलन अखिल भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक आन्दोलन था. लोकव्यापी स्वरूप, आनुभूतिक गहराई, अखिल भारतीय विस्तार एवं लोक की चिंता (चाहे वह लोकधर्म हो या लोक जागरण) के कारण इस आन्दोलन में एक ओर *“भारतीय संस्कृति के अतीत की स्मृति, अपने समय के समाज तथा संस्कृति की सजग चेतना और भविष्य की गहरी चेतना विद्यमान है.”*¹ तो दूसरी ओर इसका संबंध *“सर्वत्र लोक भाषाओं से रहा है”*² ‘भक्ति आन्दोलन और सूर का काव्य’ के प्रथम संस्करण की भूमिका में आलोचक मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं- *“भक्ति आन्दोलन के साथ-साथ विभिन्न जातीय भाषाओं के गठन की प्रक्रिया तेज होती है और आधुनिक भारतीय भाषाओं के निर्माण का आधार तैयार होता है. संस्कृत, पाली, प्राकृत और अपभ्रंश से स्वतंत्र देशी भाषाओं में साहित्य-रचना के आरम्भ के साथ भारतीय साहित्य का इतिहास विकास की एक नई अवस्था में प्रवेश करता है. ...सामंती संस्कृति, दरबारी वातावरण और पुराने काव्यशास्त्र के रीतिवाद से मुक्त भक्ति-काव्य लोक भाषाओं में जन संस्कृति और जनभाषाओं की अभिव्यक्ति का काव्य है.”*³

कबीर की भाषा :

1. मत भिन्नता के कारण

कबीर मध्यकालीन निर्गुण संत कवियों में अग्रगण्य हैं. भारतीय इतिहास विशेषकर हिंदी साहित्य के इतिहास में कबीर पर जब भी चर्चा होती है तो वहाँ गहराई में जाने के बजाय ‘कबीर कवि थे या समाज सुधारक’, कबीर मूलतः रहस्यवादी कवि थे, ‘कबीर पढ़े लिखे नहीं थे’, उन्हें सुनी सुनाई बातों का ज्ञान था’, जैसे मुद्दों पर विचार करके इति श्री मान लिया जाता है. यहाँ तक कि (संदर्भ चाहे जो भी रहा हो) साहित्य और इतिहास में कबीर को स्थापित करने वाले विद्वान आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी कबीर के कवित्व को ‘बाई प्रोडक्ट’ या फ़ोकट का माल कहा है, लेकिन हम जानते हैं कि भक्तिकाल का मुख्य अंतर्विरोध ‘लोक और शास्त्र, अनुभूति और ज्ञान, भाषा और भाखा के बीच का अंतर्विरोध है, और कबीर में भी यह अंतर्विरोध हमें देखने को मिलता है. जहाँ तक कबीर की भाषा का सवाल है है तो कबीर ने किस भाषा में काव्य-रचना की है या उनकी भाषा का मूल रूप क्या है? इस बात को लेकर विद्वानों में पर्याप्त मत भिन्नता है . इसके कई कारण हैं जिनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण निम्नलिखित हैं-

कबीर की भाषा

1. कबीर का समय साहित्य ही नहीं इतिहास का भी संक्रमण काल है. इतिहास में कबीर का समय क्या था इस बात को लेकर अलग-अलग विद्वानों की अलग-अलग राय है.
2. कबीर की रचनाओं के प्रामाणिक पाठ का न मिलना अर्थात् उनकी रचनाओं के जो संग्रह मिलते हैं उनमें प्रयुक्त भाषा एक दूसरे से साम्य नहीं रखती.
3. स्वयं कबीर द्वारा भाषा के सम्बन्ध में कहे गये कुछ दोहे जैसे -

➤ *बोली हमारी पूरब की हमें लखें नहीं कोय*

हमको तो सोई लखें, धुर पूरब का होय॥

➤ *संसकिरत है कूप जल, भाखा बहता नीर*

➤ *मसि कागद छूओ नहीं, कलम गहि नहीं हाथ*

II. आलोचकों की दृष्टि में :

कबीर का व्यक्तित्व एवं कृतित्व समकालीन परिस्थितियों के संघात से निर्मित हुआ था. जीवन और उसकी अनुभूति के प्रति जबाबदेह होने के कारण उनकी रचनाओं में अनुभूति, संघर्ष, ज्ञान और निर्भीकता के साथ-साथ 'आखिन देखी की प्रामाणिकता' का प्रभाव तो दिखता है, परन्तु जीवन और रचना की भाषा एक होने के बावजूद उनके भाषा-निर्धारण में विद्वानों में पर्याप्त मत-भिन्नता दिखाई पड़ता है. उनकी भाषा को किसी ने अवधी तो किसी ने भोजपुरी, किसी ने राजस्थानी तो कोई विविध भाषाओं के सम्मिश्रणसे युक्त ब्रजभाषा बताया है. हिंदी आलोचना के शिखर पुरुष आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने *कबीर की साखियों की भाषा को 'सधुक्कड़ी' नाम दिया है, जिसका तात्पर्य राजस्थानी, पंजाबी मिश्रित खड़ी बोली से है. किन्तु रमैनियों एवं पदों में उन्होंने पूर्वी बोली के मेल के साथ मुख्यतः ब्रजभाषा माना है. उन्ही के शब्दों में- "इसकी भाषा सधुक्कड़ी अर्थात् राजस्थानी, पंजाबी मिली खड़ी बोली है, पर 'रमैनी' और 'सबद' में गाने के पड़ हैं जिनमें काव्य की ब्रजभाषा और कहीं-कहीं पुरबी बोली का भी व्यवहार है."*⁴ बाबू श्याम सुन्दर दास ने "कबीर की भाषा को 'पंचमेल खिचड़ी' और इसका कारण *"उन्होंने दूर-दूर के साधू-संतों का सत्संग किया था जिससे स्वाभाविक ही उन पर भिन्न-भिन्न प्रान्तों की बोलियों का प्रभाव पड़ा."*⁵ बताया है. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, सुनीति कुमार चटर्जी तथा उदय नारायण तिवारी जैसे मनीषी कबीर की भाषा को भोजपुरी मानने के पक्ष में हैं. आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार- *"साखियों की भाषा में खड़ी बोली का जितना अधिक व्यवहार मिलता है उतना सबदी में नहीं. उनमें ब्रजी के शब्द कुछ अधिक मिलते हैं. रमैनी में पूर्वी रूप बराबर दिखाई देते हैं. जैसे*

कबीर की भाषा

कोई-कोई या कोऊ-कोऊ के स्थान पर केऊ-केऊ. इस प्रकार विचार करने से कबीर की तीन प्रकार की प्रवृत्तियों में स्थूल रूप से हिंदी की तीन उपभाषाओं की स्पष्ट और निश्चित प्रवृत्ति मिल जाती है.”⁶ इससे अलग रामकुमार वर्मा 'हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' में स्पष्ट करते हैं- “कबीर ने अपनी भाषा पूरबी लिखी है पर नागरी प्रचारिणी सभा ने 'कबीर ग्रंथावली' का जो प्रमाणिक संस्करण प्रकाशित किया है, उसमें पूरबीपन किसी प्रकार भी नहीं है. इसके पर्याय उसमें पंजाबीपन बहुत है.” गोविन्द त्रिगुणायत के मतानुसार “कबीर ने किसी एक भाषा का प्रयोग नहीं किया. उनकी बानी में हिंदू, उर्दू, फारसी आदि कई भाषाओं का सम्मिश्रण तो मिलता ही है साथ ही साथ अवधी, खड़ी, भोजपुरी, पंजाबी, मारवाड़ी आदि का भी प्रचुर प्रयोग किया गया है.”⁸

क्या आप जानते हैं ?

कबीर की भाषा में किसी एक बोली या भाषा की प्रधानता नहीं है. वह कई बोलियों या भाषाओं के मिश्रण से निर्मित हुई है. उसमें एक ओर भोजपुरी, अवधी, ब्रज, पंजाबी और खड़ी बोली की प्रधानता है तो दूसरी ओर अरबी-फारसी का प्रभाव भी दिखाई देता है.

कबीर अमृत वाणी का वीडियो देखने के लिए यहाँ क्लिक करें-

<http://www.youtube.com/watch?v=JWrqvgJ4oLM> (साभार : यू ट्यूब वीडियो)

III. विभिन्न बोलियों / भाषाओं की भूमिका

कबीर पढ़े लिखे नहीं थे, हिंदी भाषा और व्याकरण के अनुशासन का मानक रूप उनमें मिलता है या नहीं इस किम्बदंतियों में पड़े बगैर कबीर के नाम पर जो उपलब्ध प्रमाणिक ग्रंथ हैं उसका अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि कबीर ने अपनी भाषा का चुनाव मध्यकाल में विकसित होने वाली आर्यभाषाओं से किया था. उनके भाषा-निर्माण में एक से अधिक भाषाओं एवं बोलियों की भूमिका रही है. इसलिए उनकी भाषा में अनेक बोलियों के शब्द मिलते हैं. भाषा की यह विशेषता कबीर के अलावा अन्य भक्त-कवियों में भी मिलती है. इसका कारण इन रचनाकारों का यहाँ-वहाँ घूमना जैसी प्रवृत्ति ही नहीं बल्कि रामविलास शर्मा ने 'संत साहित्य के अध्ययन की समस्याओं' का अवलोकन करते हुए सही ही लिखा है- “अवध, ब्रज, बुंदेलखंड आदि की जनता ज्यों की त्यों अपने जनपदों में बंद न रहकर इधर-उधर बिखरने

कबीर की भाषा

लगी थी. भोजपुरी और मैथिली जनपदों में अवधी बोलने वाले, अवध में ब्रजभाषा या खड़ी बोली बोलने वाले प्रवेश करने लगे थे. भारतेंदु हरिश्चंद्र और रामचंद्र शुक्ल दोनों ने ही इस तथ्य पर प्रकाश डाला है कि पूर्व में खड़ी बोली का प्रसार पछांह की व्यापारी जातियों ने किया. 16-17वीं सदी के आगरा और बनारस में एक से अधिक बोलियाँ सुनी जाती थी. न केवल अनेक जातियों के व्यापारी वहाँ आते थे वरन कारीगर, बुनकर, नौकरी पेशा-लोग, सैनिक आदि भी वहाँ एकत्र होते थे. जनपदों का अलगाव कम होना, बोलियों का परस्पर घुलना मिलना इसी परिस्थिति से संभव हुआ.⁸ कारण चाहे जो कुछ भी हो लेकिन कबीर की रचनाएं आज हमें जिस रूप में प्राप्त हैं उनमें खड़ी बोली, ब्रज, अवधी, पंजाबी, राजस्थानी, भोजपुरी एवं अन्य भाषाओं का लोक-धरातल विद्यमान है. कुछ उदाहरण-

खड़ी बोली- - यह संसार कागद की पुड़िया, बूँद पड़ै घुल जाना है.

-आऊंगा न जाऊंगा, मरूंगा न जीऊंगा.

राजस्थानी- - क्या जाणौं उस पीव कूँ कैसे रहसी रंग

-जिभड़िया छाला पड़्या. नाम पुकारि-पुकारि

-जाणैगा रे जीवड़ा, मार पड़ैगी तुझ.

पंजाबी - -अंभड़िया तो झाई पड़ी, पंथ निहारि निहारि.

-रलि गया आटे लूण

-लूण विलग्गा पाणियाँ पाणी लूण विलग्ग.

ब्रज- -कौन पूत को कार्कोँ बाप.

-मेरौं मन लागौं तोही रे

भोजपुरी- -मनवां तो चहुँ दिसि फिरै, यह तो सुमिरै नाहि

क्या आप जानते हैं ?

कबीर के भाषा की सर्वोपरि विशेषता यह है कि जब उन्होंने अवधू या साधनात्मक चीजों को संबोधित किया तो प्रायः नाथपंथियों का प्रयोग किया है. जब हिन्दू विधि-विधानों पर अपने तीखे

कबीर की भाषा

बाण चलाते हैं तब तत्सम एवं तद्भव शब्दों का प्रयोग करते हैं और जब मौलवी या उनके कर्मकांडों को फटकारते हैं जब अरबी-फारसी शब्दों की सहजता देखते ही बनती है।

4. भाषिक संरचना के विभिन्न आयाम और कबीर की भाषा

1. शब्द-भण्डार -

शब्द-भण्डार के धरातल पर कबीर की भाषा काफी समृद्धशाली एवं लोक-निकट है। उनकी रचनाओं में तत्सम, तद्भव, देशज तथा विदेशी चारों प्रकार के शब्दों का भरपूर प्रयोग देखने को मिलता है। इतना ही नहीं कबीर ने “लोहार, कुंभकार, बढई, जुलाहा, किसान आदि के जीवन और व्यवसाय से जिन शब्दों को लिया है उनमें अधिकांश अब अप्रभावित हो चुके हैं। कुछ तो इतने व्यंजक और अर्थ गाम्भीर्य हैं कि उनके पर्याय खोजना कठिन है। जैसे बजनिया, तितरबानी, पासंग, तालाबेलि, निहोरा, पोतानहारी इत्यादि।¹⁰ अनेक तद्भव शब्द “ऐसे हैं जिन्हें पहचानना भी कठिन हो जाता है वे तत्सम जैसे ही लगने लगते हैं। जैसे- स्यंघ (सिंह), निह्य (निधि), विनान (विज्ञान), म्यंत (मित्र)।¹¹ तत्कालीन परिस्थितियों में संस्कृत जहाँ परंपरा से प्राप्त सभ्य एवं सुसंस्कृत वर्गों की भाषा थी, वहीं अरबी मुस्लिम शासकों की धर्म-भाषा एवं फारसी को राजभाषा का दर्जा प्राप्त था। इसलिए मुस्लिम शासन में अरबी एवं फारसी दोनों भाषाओं का प्रसार-प्रचार काफ़ी बढ़ गया था। यह अकारण नहीं है कि न केवल कबीर बल्कि अन्य भक्त कवियों (सूर, तुलसी, जायसी) के यहाँ भी अरबी फारसी का प्रयोग बहुतायत में मिलता है। जनजीवन में घुले-मिले शब्दों का सर्वाधिक प्रयोग कबीर ने अपनी भाषा में किया है। कबीर के भाषा की सर्वोपरि विशेषता यह है कि जब उन्होंने अवधू या साधनात्मक चीजों को संबोधित किया तो प्रायः नाथपंथियों का प्रयोग किया है। जब हिन्दू विधि-विधानों पर अपने तीखे बाण चलाते हैं तब तत्सम एवं तद्भव शब्दों का प्रयोग करते हैं और जब मौलवी या उनके कर्मकांडों को फटकारते हैं जब अरबी-फारसी शब्दों की सहजता देखते ही बनती है। इससे भाषा में स्वाभाविकता एवं प्रमाणिकता-सी आ गई है। जैसे-

तत्सम- कूप, पंथ, लोचन, गगन, नीर, पावक, सज्जन, क्रोध.

तद्भव- पाथर, राति, चाम, गाँव.

कबीर की भाषा

देशज- घूंट, जंजाल, बांगर, थोथा, मुराड़ा

विदेशी- (अरबी-फारसी)- खूब, साहब, गोर, खसम, खसक, जहाज, दीवाना, दोजख, ईमान इत्यादि.

II. व्यंग्यात्मकता -

कबीर की रचनाधर्मिता का मूल स्वर उसकी व्यंग्यात्मकता में अन्तर्निहित है. हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं- *“हिंदी कविता के हजार वर्षों के इतिहास में कबीर जैसा व्यंग्यकार पैदा नहीं हुआ.... अत्यंत सीधी भाषा में वे ऐसी चोट करते हैं कि चोट खाने वालों के लिए केवल धूल झाड़कर चलने के सिवाय कोई रास्ता ही नहीं रहता.”*¹² वस्तुतः व्यंग्यात्मकता के कारण ही कबीर की भाषा की मार बहुत तेज है. सभी धर्मों में व्याप्त बाह्याडम्बर एवं मिथ्याचार को फटकार लगाने में वे अपना सानी नहीं रखते हैं. कबीर का मानना था कि धार्मिक रुढ़ियों की जकड़बंदी के कारण ही मनुष्य सार तत्व को ग्रहण नहीं कर पाता है और वह ईश्वर की कृपा पाने से वंचित रह जाता है. इसलिए उन्होंने एक ओर हिंदू धर्म में प्रचलित अंधविश्वास, रुढ़ियों, तिलक एवं अन्य कर्मकांडों की निस्सारता पर जोरदार प्रहार किया है, तो दूसरी ओर इस्लाम, धर्मावलंबियों के रोजा, नमाज़ तथा धर्म क नाम पर की जाने वाली हिंसा का भी खंडन किया है. साथ ही उन्होंने नाथपंथी योगियों एवं जैनियों के ब्राह्याचार का भी कड़ा विरोध किया है. कबीर लगभग सभी धर्म में प्रचलित ऐसे सभी कर्मकांडों की निंदा कर रहे थे जो मनुष्य और मनुष्य के बीच भेद पैदा करता, उनके बीच की खाई को भरने के बजाए बढ़ाता हो. इसलिए व्यंग्यात्मकता कबीर के कविताओं की बुनियादी विशेषता बनकर उभरी है.

1. **काकर पाथर जोरि के, मस्जिद नई बनाय.**

ता चढि मुल्ला बांग दे, बहरो भयो खुदाय.

2. **मूंड मुंडाए हरि मिले, सब कोई लेय मुंडाय**

बार-बार के मुंडते, भेड़ न बैकुंठ जाय

कबीर के सामने जैसा कि रामस्वरूप चतुर्वेदी ने भी लिखा है- *“समाज सुधार की भावना या हिंदू-मुस्लिम एकता एक प्रमुख वस्तु थी जिसे उन्होंने अपनी काव्य संवेदना में ढाला.”*¹³ समाज

कबीर की भाषा

सुधार या हिंदू मुस्लिम एकता के लिए यह जरूरी था कि उन धर्मों में व्याप्त कुरीतियों का पर्दाफाश किया जाए, और कबीर ने ऐसा ही किया. इसलिए व्यंग्यात्मकता के धरातल पर विकसित कबीर की वाणी में आक्रामकता का गुण भी कथ्य के अनुसार आता चला गया. आक्रामकता व्यक्तित्व के सार्थक अस्तित्व के लिए किए जान वाले संघर्ष से उत्पन्न होती है. हस्तक्षेप की अनिवार्यता भी भाषा और व्यक्तित्व को आक्रामक बनाती है. संघर्ष एवं अन्याय के प्रतिकार की साहसी शक्ति ने कबीर की भाषा को बहुत हद तक आक्रामक बना दिया है.-

दिन में रोज़ा रखत है, रात हनत है गाय

यह तो खून वह बंदगी, कैसी खुशी खुदाय

III. अलंकार-

अलंकार को काव्य का शोभावर्धक धर्म माना जाता है जिससे भाषागत सौन्दर्य को समुचित रूप से समझा जाता है. भारतीय परंपरा में अलंकारों का विशेष महत्व है. आचार्य दंडी ने इसे काव्य की शोभा करने वाला धर्म बताया गया है. "काव्य शोभाकरान् धर्मान् अलंकरान् प्रयक्षते" तो आचार्य वामन के अनुसार अलंकार के कारण ही आचार्य काव्य ग्राह्य होता है (काव्यं ग्राह्यं अलंकरात्) कबीर काव्यशास्त्र की बारीकियों से सर्वथा अपरिचित थे (हालाँकि नित्य नए खोजों से यह विवाद बना हुआ है कि कबीर निरक्षर नहीं थे, उन्हें शास्त्र और समाज का इतना ज्ञान नहीं होता तो उनका साहित्य भाषा और संवेदना दोनों दृष्टि से इतना समर्थ नहीं होता) इसीलिए अपने काव्य को व्याकरणिक नियमों की श्रृंखला में नहीं बाँध सके. फिर भी उनके काव्य में शब्दगत और अर्थगत अलंकार अनायास ही सही परन्तु स्वाभाविक रूप से आ गए हैं. कबीर की रचनाओं को पढ़कर ऐसा कतई नहीं लगता है कि उन्होंने अलंकार-वर्णन के लिए कविता लिखी होगी. अपनी उक्तियों पर अलंकारों का मुलम्मा चढाने, उससे मानसिक कलाबाजी करने के बजाय कबीर का उद्देश्य सामाजिक-विषमता के कारणों एवं मनुष्य-मनुष्य के बीच के भेद को सामने लाना था. इसलिए उनकी रचनाओं को समझते हुए हमें छंद, गुण, अलंकार, रस, शब्द-शक्ति जैसी व्याकरणिक कोटियों के निर्धारण की पद्धति से बचना चाहिए. गोविन्द त्रिगुणायत के मतानुसार- **"उन्होंने अपनी उक्तियों पर कभी गुण अलंकारादि का कृत्रिम मुलम्मा चढाने की चेष्टा नहीं की थी. यह बात दूसरी है कि उक्ति और उपदेशों को अत्यधिक प्रभावात्मक बनाने के प्रयत्न में स्वाभाविक अलंकारों की योजना स्वतः हो गई हो. अलंकार कबीर के लिए साध्य नहीं,**

कबीर की भाषा

स्वाभाविक साधन मात्र थे।¹⁴ कबीर की कविताओं में हलांकि अनुप्रास, श्लेष, अन्योक्ति, उत्प्रेक्षा, यमक, विरोधाभास, अतिशयोक्ति, असंगति, विभावना जैसे अनेक अलंकारों की सुंदर योजना देखने को मिलती है, परन्तु कबीर का प्रिय अलंकार उपमा और रूपक है। कबीर रूपक बाँधने में बड़े कुशल थे। उनके सांगरूपक जीवन के विविध क्षेत्रों से चुने गए उपमानों पर आधारित हैं। इसी प्रकार उनके द्वारा आध्यात्मिक प्रेम, साधना-पद्धति, दुराग्रही प्रवृत्ति के स्पष्टीकरण के लिए चुने गए उपमान जहाँ एक ओर कबीर की मौलिक कल्पना-शक्ति का परिचय देते हैं वहीं दूसरी ओर उनके व्यापक जीवनानुभव का प्रमाण भी प्रस्तुत करते हैं। कुछ उदाहरण देखिए-

रूपक - **माया दीपक नर पतंग, भ्रमि-भ्रमि मांहि पडंत ।**

कहै कबीर गुरु ग्यान ते, एक आध उबरंत ॥

- **नैनो की करि कोठरी, पुतली पतंग बिछाय ।**

पलकों की चिक डालिकै, पिय को लिया रिझाय ॥

उपमा- **यह संसार ऐसा, जैसा सेमल फूल**

दृष्टांत-पाणी केरा बुदबुदा अस मानस की जाति ।

देखत ही छिपी जाएंगे ज्यों तारे परभातिं ॥

अन्योक्ति- **माली आवत देखकर कलियाँ करी पुकार ।**

फुलि-फुलि चुनि लिए काल्हि हमारी बार ॥

व्यतिरेकी- **चकई बिछुरी रैनि की आई मिले परभाति ।**

जे नर बिछुरे राम ते, दिन मिले न राति ॥

अनुप्रास+वक्रोक्ति- **बिरहिन उठि-उठि भुईं परै, दरसन कारन राम ।**

मुए दरसन देहुगे, सो आवै कौनो काम ॥

विशेषोक्ति+दृष्टांत+यमक- **संत न छोड़े संतई जाँ कोटिक मिलहि असंत ।**

कबीर की भाषा

मलय भुजंगम बेढिऔं, तऊ शीतलता न तजंत ॥ इत्यादि

IV. मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ-

मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ भाषा को प्रौढ़ता प्रदान कर लेखक को समाज से जोड़ने का कार्य करते हैं. कबीर पैदा चाहे जहाँ लिए हो उनका पालन पोषण गरीब जुलाहा परिवार में, निम्न वर्ग में हुआ था. ग्रामीण जीवन में लोग सटीक अभिव्यक्ति एवं उस अभिव्यक्ति में पैनापन लाने के लिए अन्य उपकरणों के साथ लोकोक्ति एवं मुहावरे का प्रयोग लगभग हर बात में किया करते हैं कबीर की रचना का भी मूल स्रोत 'कागद लेखी' नहीं अपितु 'आखिन देखी' था. वे निर्भीक एवं स्पष्ट वक्ता थे. उन्होंने कभी किसी की झूठी खुशामद नहीं की. योगी हो या पंडित, शैव हो या शाक्त, हिंदू हो या मुसलमान, स्त्री हो या पुरुष, राजा हो या प्रजा, मुल्ला या मौलवी सभी के कठमुल्लेपन पर समान भाव से प्रहार किया. साथ ही वे लोकभाषा के समर्थक भी थे (तभी बार-बार भाखा पर लौटते हैं) यह भी कारण हो कि लोक-जीवन में प्रचलित अनेक लोकोक्ति और मुहावरे एवं उससे अर्थ-गाम्भीर्य में होने वाले पैनापन को उन्होंने जो साहित्यिकता प्रदान की है., वह बहुत कम रचनाकारों में देखने को मिलता है. उनके द्वारा प्रयुक्त लोकोक्ति एवं मुहावरे आज भी जनमानस में ऐसे बसे हुए हैं.

उदाहरण-

-बोए पेड़ बबूर का तो आम कहाँ से होई.

-जाका बासा गोर में सो क्यूँ सोवै सुख

-पाँव कुल्हारी मारिया मूरख अपने हाथ

-खलक चबैना काल का

जौ हँसि बोलूँ और सौ तौ नील रंगाऊ दंत" इत्यादि ।

कबीर की भाषा

V. 'कहै कबीर' यानी विद्रोहात्मक संबोधन शैली -

किसी बात को घुमा फिरा कर कहने की प्रवृत्ति कबीर में नहीं थी. उनकी कविता उनके **“सहज जीवन बोध और तत्कालीन समाज व्यापी मिथ्याचार के बीच उत्पन्न द्वंद्व एवं तनाव की कविता है”**¹⁵. मध्यकाल के वे ऐसे अकेले कवि हैं जिन्होंने जीर्ण-शीर्ण परंपराओं एवं परंपरा के नाम पर अंधविश्वास एवं कर्मकांडों का खुलकर विरोध किया है. वे परिचित शब्द-संसार के माध्यम से ऐसा सजीव और द्वंद्वात्मक चित्र उपस्थित करते हैं कि श्रोता स्वयं को लेखक से रु-ब-रु समझने लगता है. अनुभवों की इसी अभिव्यक्ति को जिसे आधुनिक आलोचना की शब्दावली में सपाटबयानी कहते हैं, कबीर की भाषा में स्पष्टतः और काव्यात्मक रूप में देखा जा सकता है. मनुष्य मात्र की एकता में विश्वास एवं दीन-हीन तथा उपेक्षित मानव समाज के प्रति अपार सहानुभूति और उन तक अपनी आवाज पहुँचाने का उद्देश्य भी उन्हें घुमा-फिरा कर कुछ कहने से सचेत करता है. उदाहरण-

“सुखिया सब संसार है, खावै अरु सोवै

दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रोवै”

कबीर के यहाँ भाषा और संवेदना दोनों के कई रंग हैं. कबीर पर जब भी बात की जाती है तो उनकी संवेदना को उनकी विद्रोही चेतना एवं उनके कवि या समाजसुधारक वाले रूप से जोड़ दिया जाता है. तो भाषा को काव्यशास्त्रीय प्रतिमानों पर कसकर 'भाखा' के पक्ष में निष्कर्ष दे दिया जाता है. हमें यह भी ध्यान देना होगा कि कबीर के नाम पर आज जो भी उपलब्ध रचनाएँ हैं, उनमें आधे से अधिक पदों में 'कहै कबीर' का संबोधन आता है और यह शैली मात्र कबीर की ही नहीं सूरदास, तुलसीदास एवं रहीम तक में मिलती है. परन्तु कबीर के यहाँ इस संबोधन का विशेष सन्दर्भ है. इस पर पुरुषोत्तम अग्रवाल ने भी 'अकथ कहानी प्रेम की' में विस्तार से चर्चा की है. कवि की पहचान शब्द से नहीं आवाज से होती है. कबीर किसको और क्या सुनाना चाहते थे इसकी तर्कसंगत व्याख्या करते हुए पुरुषोत्तम अग्रवाल लिखते हैं “जो पांडे और मौलाना, राजा और सामंत समझ रहे हैं कि उनका काम है कहना और बाकी सब का सुनना और मानना, उन्हें चुनौती देती कासी के जुलाहे की, दस्तकार की आवाज कदम-कदम पर सीना ठोंककर कहती है कि- कहै कबीर.... दो साधारण शब्द असाधारण चुनौती देते हैं सत्ता तंत्र को, ज्ञान पर

कबीर की भाषा

एकाधिकार के दावों को. जिन्हें संबोधित करते हैं- 'पांडे कौन कुमति तोहि लागी' या **“जोरें खुदाइ तुरक मोहि करता, आपैं किन कट जाई”**. जिस श्रोता को वे अपनेपन के साथ, लगाव के साथ संबोधित करते हैं. जिसे सुनाना चाहते हैं वह साधु है, कबीर का भाई जात भाई है नहीं. **“सुनो भाई साधो...”**¹⁶

क्या आप जानते हैं ?

कबीर की अधिकांश साखियों में दोहा छंद का प्रयोग किया गया है जिसके कारण कभी-कभी साखी को दोहे का पर्याय समझ लिया जाता है. वस्तुतः कुछ साखियाँ दोहे के अतिरिक्त सोरठा और चौपाई जैसे छंदों में भी लिखी गई हैं. हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है- **“जिसे सिद्धों ने 'उएस' (उपदेश) कहा है वही बाद में साखी बन गया है.”**

VI. काव्य-रूप एवं छंद-

निर्गुण संतों का सारा साहित्य मुख्यतः मुक्तक रूप में उपलब्ध है. जिस अंतस्साधनात्मक अनुभूतियों, अमूर्त एवं रुढियों तथा कर्मकाण्डीय पाखंडों से वे समाज को अवगत करा रहे थे, उसके लिए मुक्तक शैली ही सबसे उपयुक्त थी. कबीर 'शास्त्र के विरुद्ध लोक का सच' व्यक्त कर रहे थे. उनकी कविता लोक को संबोधित है. उन्होंने कविता के लिए कविता नहीं लिखा अपितु उनकी कविता लोक को संबोधित है इसलिए उनकी कविता को पारंपरिक काव्यशास्त्रीय प्रतिमानों पर परखने के बजाय उसे लोक, स्वानुभूति एवं विद्रोह के स्तर पर ही सही तरीके से समझा जा सकता है. कबीर की समस्त रचनाओं को “दो प्रकार की रचनाओं में विभक्त किया है. बानी और बीजक. बानी के भी तीन भाग किये गए हैं- **साखी, सबद और रमैनी । बीजक में भी ये तीनों भाग मिलते हैं किन्तु उसमें साखी एवं सबदों की संख्या अपेक्षाकृत कम हैं.**¹⁷ कबीर साहित्य का अध्ययन करने पर हम देखते हैं कि कबीर ने हलांकि चौतीसी, विप्रभतीसी, कहरा, हिंडोला, वसंत, चाचर, बेलि, बिरहुली, बावनी, थिति आदि अनेक छंदों का प्रयोग किया है, परन्तु उनका प्रिय छंद साखी, सबद और रमैनी ही है. इनमें से भी साखी न केवल कबीर का अपितु अधिकांश संत कवियों का प्रिय एवं बहुप्रयुक्त काव्य रूप है. कबीर की अधिकांश साखियों में दोहा छंद का प्रयोग किया गया है जिसके कारण कभी-कभी साखी को दोहे का पर्याय समझ लिया जाता है. वस्तुतः कुछ साखियाँ दोहे के अतिरिक्त सोरठा और चौपाई जैसे छंदों में भी लिखी गई हैं. हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है- **“जिसे सिद्धों ने 'उएस' (उपदेश) कहा है वही बाद**

कबीर की भाषा

में साखी बन गया है।¹⁸ साखी के बाद कबीर के द्वारा बहुप्रयुक्त काव्य रूप सबद' है। इसके लिए पद या बानी का प्रयोग भी किया जाता है। कबीर तथा अन्य संत इन पदों को जनमानस के बीच गाया करते थे, इसलिए अधिकांश 'सबद' रागबद्ध है। रमैनी को लेकर यह भ्रम है कि इसमें राम से संबंधित बातें कही गई हैं। इसलिए माना जाता है कि 'रामायण' शब्द बिगड़ते - बिगड़ते रमैनी हो गया। किन्तु सभी रमैनियाँ इसी विषय तक सीमित नहीं हैं। कुछ में सामाजिक विद्रूपताओं पर भी प्रहार किया गया है। स्पष्ट है कि कबीर ने अपने काव्य में मूल रूप से दोहा के रूप में साखियों तथा विभिन्न राग-रागनियों के रूप में पदों का प्रयोग किया गया है। छंदों में बंधे एवं लोक-जीवन की सहजता से संबंध होने के कारण ही कबीर के काव्य में सुर, लय एवं ताल की तारतम्यता भी परिलक्षित हुई है- उदाहरण-

"मोको कहाँ ढूँढै रे बंदे, मैं तो तेरे पास में"

न मैं देवल, न मैं मस्जिद न काबे कैलास में।"

VII. प्रतीकात्मकता एवं उल्टबाँसियाँ -

यह विचित्र विरोधाभास है कि कबीर की भाषा में जहाँ एक ओर सादगी, आक्रामकता, व्यंग्य और स्पष्टता है वहीं दूसरी ओर उसका मिजाज उसकी प्रतीकात्मकता में खुलता है। हिंदी साहित्य में कबीर के रचनात्मक व्यक्तित्व का दो रूप हमें दिखाई पड़ता है। एक पक्ष उनकी सामाजिक चेतना से संबद्ध और इस रूप में सामाजिक विकृतियों से मुठभेड़ उनकी रचनात्मक अनिवार्यता है। दूसरा पक्ष कबीर की साधना-पद्धति का है जहाँ वे अपनी आध्यात्मिक अनुभवों की दुनिया से जुड़ते हैं और इसकी अभिव्यक्ति सामान्य भाषा में संभव नहीं है जब सामान्य भाषा अनुभव की गहनता की अभिव्यक्ति में अक्षम हो जाती है तब साधक प्रतीकों का आश्रय लेता है। प्रतीक अनुभूति की सूक्ष्मता को लौकिक स्तर पर व्याख्यायित करने की एक व्यवस्था है। कबीर भी अपने आध्यात्मिक अनुभवों की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकों का भरपूर प्रयोग करते हैं। उदाहरण-

"जल में कुंभ, कुंभ में जल, बाहर भीतर पानी ।

फूटा कुंभ जल जलहि समाना, इति तथ्य कह्यौ ग्यानी ॥"

कबीर ने अपने प्रतीकों का चुनाव विभिन्न क्षेत्रों से किया है। उनके प्रतीकों की दुनिया का एक सन्दर्भ योग, साधना या साधनात्मक अनुभवों को बयाँ करता है तो दूसरा पक्ष लोक जीवन की

कबीर की भाषा

मार्मिक अनुभूति को उकेरने में भी सक्षम है. जीवन के विविध क्षेत्रों से प्रयुक्त कबीर के कुछ प्रतीकों का उदाहरण देखिए-

हठयोग- **“आकासे मुँह औधा कुआँ, पाताले पनिहारि / ताको पानी हँसा पीवै बिरला आदि विचारि !”**

प्राकृतिक प्रतीक- **माली आवत देखकै कलियाँ करै पुकार / फुलि-फुलि चुनि लिए काल्हि हमारी बार !”**

साधनात्मक प्रतीक- **“लम्बा मारग टूरि घर, विकट पंथ बहु मार,
कह संतों क्यों पाइए, दुर्लभ हरि दीदार !”**

कबीर की प्रतीक-योजना का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष है उल्टबाँसियाँ. उल्टबाँसी का शाब्दिक अर्थ है वह उक्ति जो अपने वाच्यार्थ में सामान्य अनुभव के उलट या विपरीत पड़ती हो. जब तक उल्टबाँसी में निहित प्रतीक स्पष्ट नहीं होते तब तक वह अबूझ पहली बनी रहती है, किन्तु जैसे ही उसमें निहित प्रतीकों का अर्थ खुलता है वैसे ही उल्टबाँसी का अर्थ भी खुल जाता है. पीताम्बर दत्त बड़थवाल लिखते हैं- **“आध्यात्मिक अनुभव की अनिर्वचनीयता के कारण साधक को कभी-कभी परस्पर विरोधी उक्तियों द्वारा व्यक्त करने का ढंग अपनाना पड़ता है, और इसके आधार पर ऐसे गूढ़ प्रतीकों की सृष्टि हो जाती है जिन्हें उल्टबाँसी का विपर्यय कहते हैं. किन्तु कभी-कभी इन उल्टबाँसियों का प्रयोग अर्थ को जान बुझकर छिपाने के लिए भी हुआ करता है जिससे आध्यात्मिक मार्ग के रहस्यों का पता अयोग्य व्यक्ति को न लग पावे.”¹⁹** संत साहित्य के विशेषज्ञ-विद्वान परशुराम चतुर्वेदी का भी मानना है- **“ये उल्टबाँसियाँ बहुधा अटपटी बानियों के रूप में रची गई रहती है जिस कारण इनके गूढ़ आशय को शीघ्र न समझ पाने वाला इन्हें सुनकर आश्चर्य में अवाक् रह जाता है और जब कभी इन पर ध्यानपूर्वक विचार कर लेने पर वह इन शब्दों के पीछे निहित रहस्य को जान पाता है तो उसे अपार आनंद भी मिलता है.”²⁰**

कबीर की अधिकांश आध्यात्मिक उक्तियाँ उल्टबाँसियों के रूप में अभिव्यक्त हुई हैं. वस्तुतः कबीर की उल्टबाँसियाँ आदिकालीन नाथ एवं सिद्ध परंपरा में प्रयुक्त हुई संधा भाषा या संध्या भाषा) का ही विकसित रूप मालुम होती है. नाथ परंपरा के साधक हठयोग में विश्वास रखते थे जिसमें इन्द्रियों का स्वभाव पलटने एवं कुण्डलिनी जागरण का प्रयास किया जाता था. चूँकि

कबीर की भाषा

कबीर की परवरिश नाथ परंपरा में हुई थी. इसलिए कबीर पर संधा भाषा का सीधा असर दिखता है. आध्यात्मिक अनुभूतियों (संधा भाषा का प्रभाव ही सही) के अलावा कबीर द्वारा उलटवासियों के प्रयोग का एक और कारण था. शिव कुमार मिश्र लिखते हैं- **“उल्टबाँसियाँ उन्होंने साधारण जनता को अपने ज्ञान से आतंकित करने के लिए नहीं लिखी. उनका लक्ष्य पोथी ज्ञान से दबे पण्डित थे, जिनके बीच कबीर को रहना और जीना था. जाहिर है कि उनकी उल्टबाँसियों के अर्थ पोथियों में नहीं थे और पंडितों की नगरी कासी का कोई भी पण्डित उनका अर्थ करने में समर्थ नहीं था. पंडितों के अहंकार को कबीर की ये उल्टबाँसियाँ तोड़ती हैं, उनके सारे ज्ञान की पोल खोल देती हैं.”**²¹ स्पष्ट है कबीर ने उल्टबाँसियों का प्रयोग आध्यात्मिक अनुभूतियों को बताने के साथ-साथ कासी के अहंकारियों की पोल-खोल के लिए भी किया जान पड़ता है. विरोधाभासमयी प्रस्तुति के कारण उल्टबाँसी शैली में रचे गए पदों में प्रयुक्त प्रतीक अधिक सूक्ष्म और सांकेतिक हैं. यथा-

-नैया बीच नदिया डूबी जाए ।

-एक अचम्भा देखा रे भाई । ठाढा सिंध चरावे गाई ।

-बैल बियाय गाय भई बाँझ बछरा दुहे तीनी साँझ ।

कहीं-कहीं गोरखनाथ की प्रतीकात्मक उक्तियों का प्रभाव भी कबीर की उलटवासियों पर देखने को मिलता है. जैसे-

गोरखनाथ- **“नाथ बोलें अमृत वाणी / बरिसैगी कम्बली भीजेगा पाणी ।”**

कबीर- **“कबीरदास के उल्टे वाणी / बरसै कम्बल भीजै पानी ।”**

कबीर में मूलतः अर्थ ग्रहण नहीं बिम्ब ग्रहण होता है. गद्य की भाषा सामान्यतः विचारात्मक और अभिधात्मक होती है जबकि पद्य की भाषा बिम्बात्मक और ध्वन्यात्मक. लेकिन कबीर की भाषा में अनुभूति के साथ-साथ विचारों की बहुलता के कारण वह अधिकांशतः गद्य के गुणों को ही धारण करती है. इसलिए उनके द्वारा प्रयुक्त बिम्ब सामान्यतः सहज और सर्वग्राह्य है. जैसे-

“नैनो की करि कोठरी, पुतरी पलंग बिछाय

पलकों की चिकि डारि कै, पिया को लिया रिझाय.”

कबीर की भाषा

क्या आप जानते हैं ?

हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर की भाषा को भावानुरूपिणी माना है जो भाषा का सर्वोत्तम गुण होता है. उनके अनुसार -“कबीर का भाषा पर जबरदस्त अधिकार था. वे भाषा के डिक्टेटर थे जिस बात को जिस रूप में कहना चाहा उसी रूप में भाषा से कहला दिया. बन गए तो सीधे सादे नहीं तो दरेरा देकर. भाषा कबीर के सामने कुछ लाचार सी नजर आती थी.”

5. निष्कर्ष -

कबीर की भाषा अनुभूतियों के साथ-साथ साधना एवं विचारों से भी नियंत्रित है. इसलिए उन्होंने एक और यौगिक क्रियाओं और आध्यात्मिक चिन्तनों को प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त किया है तो दूसरी और मध्यकालीन धर्म-साधना, भारतीय दर्शन, इस्लाम तथा सूफी के पारिभाषिक शब्दों को भी समाहित किया है. यथा- अनहद नाद, कुण्डलिनी, समाधि, सुरति, निरति, निरंजन, इश्क इत्यादि. इसके अतिरिक्त कबीर की भाषा सरल, स्वाभाविक और लोकोन्मुख होते हुए भी अनेक स्थानों पर संकेतात्मक, प्रतीकात्मक और पारिभाषिक शब्दावली से परिपूर्ण है. परिणामस्वरूप कुछ स्थानों पर उनकी भाषा में दुरुहता का भी समावेश हो गया है. यथा-

दुल्हिन गावहुँ मंगलचार/ हम घर आए राजा राम भरतार

कबीर की भाषा के विविध पक्षों का अध्ययन-विश्लेषण करने के उपरांत अब कबीर की भाषा की मूल प्रकृति को समझने की कोशिश करें तो हम पाते हैं कि वह एक ओर जहाँ साधना एवं विचारों से प्रभावित होने के कारण गद्यात्मक है वहीं दूसरी ओर अनुभूति की तीव्रता एवं भावानुकूलता के कारण पद्य-रचना के नियमों की भी वहाँ रक्षा हुई है हलाँकि अपनी रचना-प्रक्रिया में कबीर न तो तराशे हुए शब्दों की प्रतीक्षा करते हैं न ही उन्हें रसिकों के तालियों की परवाह है. इसलिए अकथ कहानी को रूप देकर मनोहारी बनाने की जैसी ताकत कबीर में है वह अन्यत्र दुर्लभ है. संभवतः इसीलिए हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर की भाषा को भावानुरूपिणी माना है जो भाषा का सर्वोत्तम गुण होता है. उनके अनुसार- **“कबीर का भाषा पर जबरदस्त अधिकार था. वे भाषा के डिक्टेटर थे जिस बात को जिस रूप में कहना चाहा उसी रूप में भाषा से कहला दिया. बन गए तो सीधे सादे नहीं तो दरेरा देकर. भाषा कबीर के सामने कुछ लाचार सी नजर आती थी.”**²²

कबीर की भाषा

समग्रतः हम कह सकते हैं कि भाषा की दृष्टि से कबीर ऐसे सच्चे लोकनायक हैं जिन्होंने अपनी बात को लोकभाषा में अभिव्यक्त किया. यह उनकी लेखनी का ही जादू था कि सैकड़ों वर्षों के बाद आज भी जनता अपने को कबीर के नजदीक पाती है, उनकी रचनाओं से शक्ति और साहस पाती है. भाषा की इस विशेषता को हिंदी में बहुत बाद प्रेमचंद की रचनाओं में देखने को मिलता है. हलांकि कबीर की भाषा में कई दोष भी हैं. आलोचकों ने उनकी भाषा पर कई आरोप भी लगाये हैं. श्यामसुंदर दास को उनमें साहित्यिकता का अभाव, दुहराव से रोचकता की कमी, अपरिमार्जित एवं ज्ञान की शुष्कता से बंधी लगती है तो विजयदेव नारायण साही का मानना है कि कबीर अपनी प्रतिभा के सहारे भाषा को ठेल-ठेल कर आगे बढ़ाते हैं. अनेक आलोचकों को कबीर की भाषा उज्जड़ एवं गवॉरु भी लगती है. इन आलोचकों की राय एवं उनके पूर्वाग्रह उनके खुद के दायरे में भले तर्कसंगत हो परन्तु हम देखते हैं कि कबीर की भाषा संघर्ष से साक्षात्कार और विद्रोह की भाषा है जो शास्त्र से ज्यादा लोक-सच को बयाँ करती है. वे पांडित्य के आतंक को अस्वीकार कर कविता में मानवीय अनुभूतियों की सहजता और उसकी प्रतिबद्धता को व्यापक परिप्रेक्ष्य प्रदान करने वाले कालजयी रचनाकार हैं. उनकी भाषा कहने के लिए “उज्जड़, गँवारु चाहे जो कुछ कह ली जाये परन्तु उनकी अभिव्यक्ति के छलकते सौन्दर्य एवं शैली की विविधता पर बड़े-बड़े नागर एवं परिष्कृत कवियों की भाषा न्यौछावर की जा सकती है.” उनकी भाषा सचमुच में भारतीय संस्कृति की विविधता में एकता का प्रतिनिधित्व करती है तथा शास्त्र से अधिक लोक एवं भाषा के बदले भाखा के पक्ष में तर्कपूर्ण ढंग से विचार करने को हमें मजबूर करती है.

प्रश्नावली

वस्तुनिष्ठ प्रश्न-

1. कबीर को “भाषा का डिक्टेटर” किस आलोचक ने कहा है-
(क) रामचंद्र शुक्ल
(ख) हजारी प्रसाद द्विवेदी
(ग) नगेन्द्र
(घ) विश्वनाथ त्रिपाठी
2. कबीर ग्रन्थावली के संपादक कौन हैं ?

कबीर की भाषा

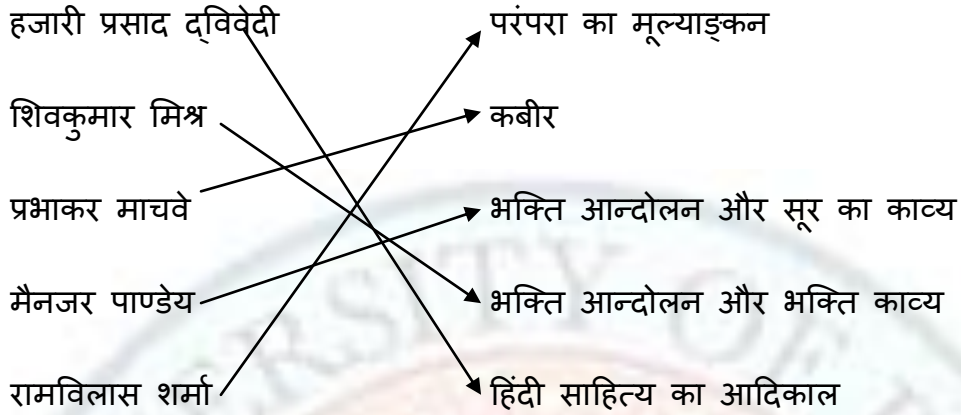
- (क) हजारी प्रसाद द्विवेदी
(ख) रामचंद्र शुक्ल
(ग) श्यामसुंदरदास
(घ) रामकुमार वर्मा
3. निम्नलिखित में से किस भाषा का प्रभाव कबीर की भाषा में नहीं दिखाई पड़ता है ?
(क) पंजाबी
(ख) खड़ी बोली
(ग) भोजपुरी
(घ) तमिल
4. "बोली हमारी पूरब की हमें लखें नहीं कोय" यह कथन किसका है ?
(क) कबीरदास
(ख) तुलसीदास
(ग) धरमदास
(घ) जायसी
5. निम्नलिखित में से किस काव्य-रूप में कबीर ने रचना नहीं की है ?
(क) साखी
(ख) प्रबंध-काव्य
(ग) सबद
(घ) रमैनी
6. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कबीर की भाषा को क्या माना है ?
(क) पंचमेल खिचड़ी
(ख) सधुक्कड़ी
(ग) पंजाबी
(घ) भोजपुरी
7. 'माली आवत देखकर कलियाँ करै पुकार' इस पंक्ति में माली किसका प्रतीक है ?
(क) बगीचे के माली का
(ख) फूलों की माला का
(ग) काल का

कबीर की भाषा

- (घ) इनमें से कोई नहीं
8. दोहा के रूप में साखियों का प्रयोग किस रचनाकार ने किया है -
- (क) कबीरदास
- (ख) तुलसीदास
- (ग) हजारी प्रसाद द्विवेदी
- (घ) मीराबाई
9. कबीर की भाषा को 'पंचमेल खिचड़ी' किसने कहा है ?
- (क) हजारी प्रसाद द्विवेदी
- (ख) रामचंद्र शुक्ल
- (ग) नामवर सिंह
- (घ) श्यामसुंदर दास
10. कबीर की भाषा को पंजाबीपन के नजदीक किसने माना है ?
- (क) नामवर सिंह
- (ख) प्रभाकर माचवे
- (ग) रामकुमार वर्मा
- (घ) रामस्वरूप चतुर्वेदी
11. "कबीर के बाद हिंदी में नागार्जुन से बड़ा व्यंग्यकार पैदा नहीं हुआ." यह कथन किसका है ?
- (क) हजारी प्रसाद द्विवेदी
- (ख) नामवर सिंह
- (ग) रामचंद्र शुक्ल
- (घ) श्यामसुंदर दास
12. "भक्ति आन्दोलन पूरे भारत में मातृभाषाओं के रचनात्मक विस्फोट का आन्दोलन है" इस कथन के लेखक हैं-
- (क) रामचंद्र शुक्ल
- (ख) शिव कुमार मिश्र
- (ग) मैनेजर पाण्डेय
- (घ) रामविलास शर्मा

कबीर की भाषा

सही मिलान करें-



दीर्घ उत्तरीय प्रश्न-

1. 'आँखिन देखी' के धरातल पर कबीर की भाषा का मूल्यांकन कीजिए.
2. 'कबीर भाषा के डिक्टेटर थे' इस कथन के आलोक में कबीर की भाषा का विश्लेषण करें.
3. 'मध्यकालीन काव्य भाषा और कबीर की भाषा' पर अपना विचार प्रकट कीजिए.
4. कबीर अध्ययन में आने वाली समस्याओं को ध्यान में रखकर कबीर के भाषा के दोषों पर विचार कीजिए.
5. कबीर की भाषा पूरे उत्तर भारत के जनमानस का प्रतिनिधित्व करती है. इससे आप कहाँ तक सहमत हैं? तर्कसंगत विचार कीजिए.

सन्दर्भ ग्रंथ सूची-

¹ मैनेजर पाण्डेय : भक्ति आन्दोलन और सूर का काव्य, पृष्ठ- दूसरे संस्करण की भूमिका

² रामविलास शर्मा : परंपरा का मूल्यांकन, पृष्ठ-69

³ मैनेजर पाण्डेय : भक्ति आन्दोलन और सूर का काव्य, पृष्ठ- प्रथम संस्करण की भूमिका

⁴ रामचंद्र शुक्ल : हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ-44

⁵ श्यामसुंदर दास : कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ-46

कबीर की भाषा

- ⁶ विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : हिंदी साहित्य का अतीत, भाग-1, पृष्ठ-152
- ⁷ रामकुमार वर्मा : हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ-249-50
- ⁸ गोविन्द त्रिगुणायत : कबीर की विचारधारा, पृष्ठ-295
- ⁹ रामविलास शर्मा : परंपरा का मूल्यांकन, पृष्ठ-47
- ¹⁰ साभार- वासुदेव सिंह : कबीर साखी सुधा, पृष्ठ-45
- ¹¹ साभार- भोलानाथ तिवारी : कबीर की भाषा , कबीर- सं. विजयेन्द्र स्नातक, पृष्ठ-242
- ¹² हजारी प्रसाद द्विवेदी : कबीर, पृष्ठ-170
- ¹³ रामस्वरूप चतुर्वेदी : हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, पृष्ठ-40
- ¹⁴ साभार- विजयेन्द्र स्नातक (सं.) : कबीर , पृष्ठ-168
- ¹⁵ रामचंद्र तिवारी : कबीर मीमांसा, पृष्ठ-177
- ¹⁶ पुरुषोत्तम अग्रवाल - अकथ कहानी प्रेम की, पृष्ठ-406
- ¹⁷ द्वारिका प्रसाद सक्सेना : हिंदी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि, पृष्ठ-110
- ¹⁸ हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिंदी साहित्य का आदिकाल, पृष्ठ-112
- ¹⁹ पीताम्बर दत्त बड़थवाल : हिंदी काव्य में निर्गुण संप्रदाय, पृष्ठ-370-71
- ²⁰ परशुराम चतुर्वेदी : कबीर साहित्य की परख, पृष्ठ-150
- ²¹ शिव कुमार मिश्र : भक्ति आन्दोलन और भक्ति काव्य, पृष्ठ-83
- ²² हजारी प्रसाद द्विवेदी : कबीर, पृष्ठ-170

सहायक पुस्तकें -

- हजारी प्रसाद द्विवेदी : कबीर
- विजयेन्द्र स्नातक (सं.) : कबीर

कबीर की भाषा

- रामचंद्र तिवारी : कबीर मीमांसा
- श्यामसुंदर दास : कबीर ग्रंथावली
- अकथ कहानी प्रेम की : पुरुषोत्तम अग्रवाल
- हिंदी के प्राचीन प्रतिनिधित्व कवि : द्वारिका प्रसाद सक्सेना
- भक्ति आन्दोलन और भक्ति काव्य : शिव कुमार मिश्र
- कबीर : एक अनुशीलन - रामकुमार वर्मा
- मध्यकालीन हिंदी काव्य भाषा : रामस्वरूप चतुर्वेदी
- हिंदी साहित्य का इतिहास : रामचंद्र शुक्ल
- कबीर के आलोचक : धर्मवीर
- इन्द्रप्रस्थ भारती (कबीर विशेषांक) पत्रिका - अप्रैल-जून 2000

